Toppersnotes
Unleash the topper in you

हरियाणा

P.G.T.

हरियाणा लोक सेवा आयोग (HPSC)

संस्कृत

भाग - 1

SIERRA INNOVATIONS

CONTENTS

संस्कृत (भाग – 1)

1. संज्ञाप्रकरणम् 1
2. संधि 8
3. छन्दःशास्त्र 35
4. अव्यय 41
5. शब्दरूप 45
6. धातुरूप 62
7. प्रत्यय 79
8. अलंकार 83
9. समास 86
10. संस्कृत व्याकरण अशुद्धि संशोधन 97
11. सामान्य अध्ययन 99
    - नीतिशतकम्
    - किरातार्जुनीयम्
    - श्रीमद्भगवद्गीता – द्वितीयोअध्याय
    - अभिज्ञानशाकुन्तलम्
    - कठोपनिषद्–प्रथमोअध्याय–प्रथमवल्ली
    - शुकनासोपदेश
    - स्वप्नवासवदत्तम्
12. सूक्त 156
    - वरूणसूक्तम्
    - पुरुषसूक्त
    - अग्निसूक्त
    - विष्णुसूक्त
13. वैदिक साहित्य 167
    - वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, याज्ञवल्क्यस्मृते, आचाराध्याय
14. लौकिकसाहित्य 174
    - रामायण
    - महाभारत

अध्याय - 1

अथ संज्ञाप्रकरणम्

नत्वा सरस्वतीं देवीं शुद्धां गुण्यां करोम्यहम् ।
पाणिनीय प्रवेशाय लघु सिद्धान्तकौमुदीम् ।

अइउण्।1। ऋलृक्। 2। एओङ्। 3। ऐऔच्। 4। हयवरट्। 5। लण्। 6। ञमङणनम्। 7। झभञ्। 8। घढधष्। 9।जबगडदश्। 10। खफछठथचटतव्। 11। कपय्। 12। शषसर्। हल्।
इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादिसंज्ञार्थानि । एषामन्त्या इतः । हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः । लण्मध्येत्वित्संज्ञकः।
अ इ उण् आदि सूत्र महेश द्वारा प्राप्त है । ये सूत्र अण् आदि संज्ञाओं (प्रत्याहार) के लिए है। इन सूत्रों के अंतिम वर्ण इत् संज्ञा के लिए है। (इत् संज्ञा के बाद इत् संज्ञक वर्ण का लोप हो जाता है । इसका प्रयोजन आगे के सूत्र में बताया जाएगा) लण् सूत्र के बीच में आने वाला अ वर्ण भी इत्संज्ञक है ।

विशेष-
इति माहेश्वराणि आदि वाक्यो । द्वारा अइउण् आदि 14 सूत्रो । का परिचय, स्वरूप तथा उद्देश्य बताया जा रहा है ॥ हलन्त्यम् सूत्र से लेकर आदिरन्त्येन सहेता सूत्र तक में इसके स्वरूप तथा उद्देश्य को स्पष्ट किया गया है ।

1. हलन्त्यम्

उपदेशेऽन्त्य । हलित्स्यात् । उपदेश आद्योच्चारणम् । सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र ॥
सूत्रार्थ- उपदेश अवस्था में अंतिम हल् की इत् संज्ञा हो। आदि उच्चारण को उपदेश कहते है। सूत्रों में जो पद दिखाई नहीं दे उसे दूसरे सूत्र से सभी जगह अनुवर्तन करना चाहिए ।
इत्- इन 14 माहेश्वर सूत्रों में अंतिम वर्णों की इत् संज्ञा करने से 42 प्रत्याहार बनता है । कम शब्दों में अधिक शब्द कहने में इसका प्रयोग किया जाता है ।
हकारादिषु- हयवर आदि व्यंजन वर्ण है । स्वर वर्ण की सहायता के विना व्यंजन वर्ण का उच्चारण नहीं हो सकता । अतः हयवर आदि व्यंजन वर्णों के उच्चारण के लिए इसे अकार सहित लिखा/ बोला गया है ।
विशेष-

1. व्याकरण शास्त्र के पांच अङ्ग है- सूत्रपाठ, धातुपाठ, गणपाठ, उणादिपाठ तथा लिङ्गानुशासन ।
2. माहेश्वर सूत्र, सूत्रपाठ, धातुपाठ, वार्तिकपाठ, गणपाठ, उणादिपाठ तथा लिङ्गानुशासन, आगम, प्रत्यय तथा आदेश को उपदेश कहा जाता है ।

धातुसूत्रगणोणादि वाक्यलिङ्गानुशासनम्
आगमप्रत्ययादेशा उपदेशाः प्रकीर्तिताः ॥
धातुसूत्रगणोणादि वाक्यलिंगानुशासनम् ।
आदेशो आगमश्च उपदेशाः प्रकीर्तिता ॥

इनमें सूत्रपाठ मुख्य भाग है, शेष उसके परिशिष्ट ग्रन्थ कहे जाते है । ये सभी रचनायें अष्टाध्यायी के सूत्रों के पूरक है । इन परिशिष्ट ग्रन्थों की सहायता से ही सूत्रों को लघु रूप में कह पाना सम्भव हो सका । आगे के पाठ में आप देख सकेंगे कि किस प्रकार प्रत्याहार तथा धातु आदि अन्य पाठों का उपयोग सूत्रों को छोटे आकार में बनाये रखने के लिए किया गया । जैसे- पाणिनि ने सर्वनाम संज्ञा के लिए 'सर्वादीनि सर्वनामानि' (अष्टा. 1.1.27) सूत्र लिखते है, यहां सर्व आदि से सर्वादि गण का निर्देश किया गया है ।

सर्वादि गण के ज्ञान के लिए गणपाठ के सहारे की आवश्यकता होती है, यदि गण पाठ नहीं होता तो इतने कम शब्दों में सूत्रों को कहना सम्भव नहीं था। सूत्र का अर्थ ही होता है- धागा। (सूत्राणि नरि तन्तवः -अमरकोष, 2.28) इसके सहारे हम विभिन्न गणों, प्रत्याहार के वर्णों तक पहुँच पाते हैं। इस प्रकार सूत्र अपने छोटे आकार में रहकर भी अधिक अर्थ को कह पाता है। इसी प्रकार 'फणां च सप्तानाम्' (अष्टा. 6. 4.125) सूत्र में फणादि सात धातुओं का निर्देश मिलता है। इसकी जानकारी धातुपाठ से मिलती है। 'उणादयो बहुलम्' (अष्टा. 3.3.1) सूत्र को समझने के लिए उणादिपाठ की शरण में जाना होता है।
इस प्रकार धातुपाठ और गणपाठ आदि उपदेश कहे जाते हैं। पाणिनि अपने सूत्र में प्रत्याहार की तरह ही इसका भी प्रयोग करते हैं। अतः सूत्रों के साथ-साथ धातुपाठ आदि का भी स्मरण करना चाहिए।

सूत्र का लक्षण-

अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद् विश्वतोमुखम्।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदोविदुः॥

सूत्रों के भेद -

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम्॥

अनुवर्तनीयम् - अष्टाध्यायी की रचना सूत्रों की शैली में हुई अतः इसे अष्टाध्यायी सूत्रपाठ भी कहा जाता है। लघुसिद्धान्तकौमुदी का निर्माण अष्टाध्यायी के सूत्रों से ही हुआ है। सूत्र में संक्षेपीकरण को महत्व दिया जाता है। हम इसके सहारे विस्तार तक पहुंच जाते हैं। संक्षेपीकरण से सूत्रों को याद रखना आसान होता है। यदि ये सूत्र बडे आकार में होते तो याद रखना भी कठिन होता। एक ही शब्द को बारंबार कहना और लिखना पडता। सूत्र में कही गयी बातों को पूरी तरह समझने के लिए हमें कुछ बुद्धि लगानी पडती है। पाणिनि ने यदि किसी सूत्र में एक बार कोई बात कह दी तो उसे आगे के सूत्र में पुनः नहीं कहते। वह नियम आगे के सूत्र में आ जाते हैं। इसे अनुवर्तन कहते हैं। जब कोई शब्द किसी सूत्र में दिखाई नहीं दे और अर्थ पूर्ण नहीं हो रहा हो तो उसे पहले के सूत्र में देखना चाहिए। जैसे- हलन्त्यम् (1.3.3) सूत्र में उपदेशेऽजनुनासिक इत् (1.3.2) से उपदेशे तथा इत् इन दो पदों की अनुवृत्ति आती है। आप देख रहे होंगें कि उपदेशेऽजनुनासिक इत् के बाद हलन्त्यम् सूत्र को लिखा गया। हलन्त्यम् सूत्र की संख्या बाद की है। उपदेशेऽजनुनासिक इत् (1.3.2) से उपदेशे तथा इत् इन दो पदों की अनुवृत्ति ले आने के बाद हलन्त्यम् सूत्र का अर्थ पूर्ण हो जाता है। अनुवृत्ति को समझने के लिए हमें अष्टाध्यायी की आवश्यकता होती है परन्तु लघुसिद्धान्तकौमुदी में सूत्र के नीचे उसकी वृत्ति भी लिखी मिलती है। यह सूत्र का पूर्ण अर्थ है। इसे अनुवृत्ति आदि प्रक्रिया को पूर्ण कर बनाया गया है।

2. अदर्शनं लोपः

प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात्।
सूत्रार्थ- विद्यमान का नहीं दिखाई देना लोप संज्ञक होता है।

3. तस्य लोपः

तस्येतो लोपः स्यात्। णादयोऽणाद्यर्थाः।
उस इत् संज्ञक का लोप होता है। अ इ उण् का ण् आदि अण् प्रत्याहार बनाने के लिए है।

4. आदिरन्त्येन सहेता

अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात् यथाऽणिति अ इ उ वर्णानां संज्ञा । एवमच् हल् अलित्यादयः ॥

सूत्रार्थ- अंतिम इत् के सहित आदि वर्ण, अपने बीच के वर्णों की तथा अपनी (आदि) भी संज्ञा हो । इसी प्रकार अक्, अच्, हल्, आदि को भी समझना चाहिए ।

विशेष-

माहेश्वर सूत्रों के प्रारंभिक एवं अंतिम अक्षरों को लेकर प्रत्याहारों (शब्द संक्षेपों) को बनाया गया है । जैसे प्रथम सूत्र में अ और ण् को लेकर अण् प्रत्याहार सिद्ध होता है । इसी प्रकार अधोलिखित प्रत्याहार बनते हैं । आप तालिका में देख सकते हैं कि अन्य सूत्रों के अंतिम अक्षर को लेकर भी प्रत्याहार सिद्ध होते हैं । जैसे- प्रथम सूत्र के अ वर्ण के साथ पांचवे सूत्र का ट् वर्ण लेकर अट् प्रत्याहार बनता है । इसी प्रकार सातवें सूत्र के प्रारंभिक वर्ण म के साथ 12 वें सूत्र के अंतिम अक्षर य् साथ जोडने पर मय् प्रत्याहार बनता है । प्रत्याहार में उन सभी स्वर और व्यंजन की गणना होती है जो प्रत्याहार के दोनों अक्षरों के बीच आ जाते हैं ।

प्रत्याहार के लिए माहेश्वर सूत्र का प्रारंभिक अक्षर लेना आवश्यक नहीं होता । प्रत्याहार के लिए माहेश्वर सूत्र के इत्संज्ञक (अंतिम वर्ण) को छोडकर कोई भी वर्ण लिया जा सकता है । जैसे यय् प्रत्याहार में माहेश्वर सूत्र के पांचवे सूत्र के दूसरे अक्षर से लेकर बारहवें सूत्र के य् से पूर्व के वर्णों की गणना होती है ।

पहले सूत्र से चौथे सूत्र तक में सभी स्वर वर्ण है। इसे अच् प्रत्याहार द्वारा कहा जाता है । 5 वें सूत्र से 14 वें सूत्र तक सभी व्यंजनों वर्ण हैं । 5 वें सूत्र के ह से 14 वें सूत्र के ल् को लेकर हल् प्रत्याहार बनता है । इसमें सभी व्यंजन वर्णों का समावेश हो जाता है ।

व्यंजन वर्णों के उच्चारण में सहायता के लिए अकार स्वर मिला हुआ है । जैसे ह् + अ = ह आदि । यह अ स्वर वर्ण व्यंजन वर्ण के उच्चारण में सहायक है । स्वर की सहायता के बिना व्यंजन का उच्चारण नहीं किया जा सकता है ।

छठे सूत्र के ल का अ इत्संज्ञक है । अर्थात् इस अ की इत्संज्ञा तथा लोप होता है । इसके फलस्वरूप ल प्रत्याहार बनता है ।

आपने अबतक जाना कि माहेश्वर सूत्रों में सभी स्वर (अच्) और व्यंजनों (हल्) की गणना की गई है । यहां ह व्यंजन के अतिरिक्त किसी भी स्वर और व्यंजन की पुनरावृत्ति नहीं हुई है । ह य व रट् इस पंचम सूत्र में तथा हल् इस 14 वें सूत्र में ह व्यंजन वर्ण दो बार आया है ॥ यह इसलिए ताकि अट् और शल् ये दो प्रत्याहार बन सकें । अट् प्रत्याहार के कारण अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि इस सूत्र के द्वारा अर्हेण में नकार को णकार हुआ और शल् प्रत्याहार के कारण शल इगुपधादनिटः क्सः सूत्र से अधुक्षत् रूप सिद्ध हुआ ।

हकारो द्विरूपात्तोऽयमटि शल्यपि वाञ्छता ।
अर्हेणाधुक्षदित्येतद् द्वयं सिद्धं भविष्यति ॥

यहाँ आदि तथा अन्त्य शब्द विभिन्न प्रत्याहारों के सन्दर्भ में समझना चाहिए । इस प्रकार 14 सूत्रों से कुल 42 प्रत्याहार बनाये जाते हैं । पाणिनि ने अपने सूत्रों तथा कात्यायन के वार्तिक में अधोलिखित प्रत्याहारों का प्रयोग किया गया है-

प्रत्याहारों के नाम

अक्	अण्	एङ्	चर्	झल्	यञ्	वल्
अच्	अण्	एच्	चय्	झस्	यण्	वश्
अट्	इण्	ऐच्	छव्	झष्	यम्	शर्
अम्	इक्	खर्	जश्	बश्	यय्	शल्
अल्	इच्	खय्	झय्	भष्	यर्	हल्
अश्	उक्	ङम्	झर्	मय्	रल्	हश्

5. ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः

उश्च ऊश्च ऊ३श्च वः । वां कालो यस्य सोऽच् क्रमाद् ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञः स्यात् । स प्रत्येकमुदात्तादि भेदेन त्रिधा ।

सूत्रार्थ- एक मात्रिक, द्वि मात्रिक तथा त्रि मात्रिक उकार के उच्चारण काल के समान जिस अच् का उच्चारण काल हो उसे क्रमशः ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत संज्ञा हो ।

उन प्रत्येक ह्रस्व आदि अच् का उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित के भेद से तीन- तीन भेद होते हैं ।

नीलकण्ठ की ध्वनि एक मात्रा वाली, कौआ की दो मात्रा वाली, मयूर की तीनमात्रा वाली तथा नेवले की ध्वनि आधी मात्रा वाली होती है । ये जब बोलते हैं तो इनके बोलने में उपर्युक्तानुसार समय लगता है ।

चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रं चैव वायसः ।
शिखी रौति त्रिमात्रं तु नकुलस्त्वर्धमात्रकम् ॥

6. उच्चैरुदात्तः

सूत्रार्थ- तालु आदि भागों के स्थान में ऊपर वाले भाग से बोले जाने वाले अच् की उदात्त संज्ञा होती है ।

7. नीचैरनुदात्तः

सूत्रार्थ- तालु आदि स्थानों में निचले भाग से बोले जाने वाले अच् की अनुदात्त संज्ञा होती है ।

8. समाहारः स्वरितः

सूत्रार्थ- जिसमें उदात्त और अनुदात्त वर्णों के धर्म सम्मिलित हो, वह अच् को स्वरित संज्ञक होता है ।

स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकत्वाननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा ॥

वह अच् ह्रस्व तथा उदात्त आदि भेद के कारण 9 प्रकार का होते हुए अनुनासिक और अनुनासिक के भेद से दो-दो प्रकार के होते हैं ।

9. मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः

मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात् । तदित्थम् दृ अ इ उ ऋ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादश भेदाः । लृवर्णस्य द्वादश, तस्य दीर्घाभावात् । एचामपि द्वादश, तेषां ह्रस्वाभावात् ॥

सूत्रार्थ- मुख सहित नासिका (नाक) से बोला जाने वाला वर्ण अनुनासिक संज्ञक हो ।

वह अच् इस प्रकार है- अ इ उ ऋ इन वर्णो में प्रत्येक वर्णों के 18-18 भेद होते हैं । लृ वर्ण का 12 भेद होता है । उसमें दीर्घ का अभाव होता है। एच् प्रत्याहार में आए वर्ण के भी 12 भेद होते हैं । इसमें ह्रस्व का अभाव होता है ।

स्वरों के भेद

अ इ उ ऋ ऌ	अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ	अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ
ह्रस्व उदात्त अनुनासिक	दीर्घ उदात्त अनुनासिक	प्लुत उदात्त अनुनासिक
ह्रस्व उदात्त अनुनासिक	दीर्घ उदात्त अनुनासिक	प्लुत उदात्त अनुनासिक
ह्रस्व अनुदात्त अनुनासिक	दीर्घ अनुदात्त अनुनासिक	प्लुत अनुदात्त अनुनासिक
ह्रस्व अनुदात्त अनुनासिक	दीर्घ अनुदात्त अनुनासिक	प्लुत अनुदात्त अनुनासिक
ह्रस्व स्वरित अनुनासिक	दीर्घ स्वरित अनुनासिक	प्लुत स्वरित अनुनासिक

10. तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्

ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णसंज्ञं स्यात् ।

सूत्रार्थ- तालु आदि स्थान तथा आभ्यंतर प्रयत्न यह दोनों जिस वर्ण के साथ तुल्य हो, वह परस्पर सवर्ण संज्ञक होता है ।

(ऋऌवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्) ।

ऋ और ऌ वर्ण की परस्पर सवर्ण संज्ञा कहनी चाहिए ।

अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः ।	अ, कवर्ग, ह तथा विसर्ग का उच्चारण स्थान कंठ है ।
इचुयशानां तालु ।	इ, चवर्ग, य तथा श का उच्चारण स्थान तालु है ।
ऋटुरषाणां मूर्धा ।	ऋ, टवर्ग, र एवं ष का उच्चारण स्थान मूर्धा है ।
ऌतुलसानां दन्ताः ।	ऌ] तवर्ग, ल एवं श का उच्चारण स्थान दांत है ।
उपूपध्मानीयानामोष्ठौ ।	उ,पवर्ग तथा उपध्मानीय का उच्चारण स्थान होठ है ।
ञमङणनानां नासिका च ।	ञ, म, ङ, ण, तथा न का उच्चारण स्थान नाक है ।
एदैतोः कण्ठतालु ।	ए तथा ऐ का उच्चारण स्थान कंठ तालु है।
ओदौतोः कण्ठोष्ठम्।	ओ, औ का उच्चारण स्थान कंठ और होठ है।
वकारस्य दन्तोष्ठम् ।	वकार का उच्चारण स्थान दांत और होठ है।
जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् ।	जिह्वामूलीय का उच्चारण स्थान जिह्वामूल है।
नासिकाऽनुस्वारस्य ।	अनुस्वार का उच्चारण नाक है।
इति स्थानानि।	यहाँ वर्णों के उच्चारण स्थान समाप्त हुए।

यत्नो द्विधा दृ आभ्यन्तरो बाह्यश्च । यत्न दो प्रकार के होते है- आभ्यन्तर और बाह्य। आद्यः पञ्चधा दृ आदि = आभ्यंतर प्रयत्न पांच प्रकार के होते हैं ।

स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतविवृतसंवृत भेदात् । स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषत् विवृत, विवृत, संवृत के भेद से ।

तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम् ।	आभ्यन्तर प्रयत्न में स्पर्श- (कुचुटुतुपु) वर्ग की स्पृष्ट संज्ञा होती है ।
ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम् ।	अन्तःस्थों (य, व, र, ल) की ईषत्स्पृष्ट संज्ञा होती है ।
ईषद्विवृतमूष्मणाम् ।	ऊष्म (श,ष,स,,ह) की ईषद्विवृत संज्ञा होती है ।
विवृतं स्वराणाम् ।	स्वर वर्णों की विवृत संज्ञा होती है ।
ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम् ।	प्रयोग अवस्था में ह्रस्व 'अ' की विवृत संज्ञा होती है ।
प्रक्रियादशायां तु विवृतमेव ।	शब्द निर्माण का प्रक्रिया में ह्रस्व 'अ' की संवृत संज्ञा होती है ।

विशेष - कुचुटुतुपु प्रत्येक वर्ग के आदि अक्षर को लेकर बनाया गया है । इसका क्रमशः अर्थ होता है - कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग । इसे इस प्रकार समझें-

उदित	वर्ग		वर्ण
कु =	कवर्ग	-	क् ख् ग् घ् ङ्
चु =	चवर्ग	-	च् छ् ज् झ् ञ्
टु =	टवर्ग	-	ट् ठ् ड् ढ् ण्
तु =	तवर्ग	-	त् थ् द् ध् न्
पु =	पवर्ग	-	प् फ् ब् भ् म्

बाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा - बाह्य प्रयत्न 11 प्रकार का होता है ।
विवारः संवारः श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्पप्राणोमहाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति ।
अर्थ- विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ।
खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च ।
अर्थ- खर् प्रत्याहार के अन्तर्गत वाले वर्ण विवार, श्वास और अघोष यत्न वाले होते हैं ।
हशः संवारा नादा घोषाश्च ।
अर्थ- हश् प्रत्याहार के अन्तर्गत वाले वर्ण संवार, नाद और घोष यत्न वाले होते हैं ।
वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यणश्चाल्पप्राणाः ।
अर्थ- वर्गों के प्रथम, तृतीय तथा पंचम वर्ण और यण् प्रत्याहार (य, व, र, ल) अल्पप्राण कहलाते हैं ।
वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः ।
अर्थ- वर्गों का दूसरा, चौथा और शल् प्रत्याहार (श, ष, स, ह) महाप्राण कहलाते हैं ।
कादयो मावसानाः स्पर्शाः ।
अर्थ- क से लेकर म तक स्पर्श कहे जाते हैं ।
यणोऽन्तःस्थाः ।
अर्थ- यण् प्रत्याहार के वर्ण अन्तस्थ कहे जाते हैं ।
शल ऊष्माणः ।
अर्थ- शल् प्रत्याहार के वर्ण उष्म कहे जाते हैं ।
अचः स्वराः ।
अर्थ- अच् प्रत्याहार के वर्ण स्वर कहे जाते हैं ।
क ख इति कखाभ्यां प्रगर्धविसर्गसदृशो जिह्वामूलीयः ।
अर्थ- क ख इति कखाभ्यां प्रगर्धविसर्गसदृशो जिह्वामूलीयः । क एवं ख के पहले आधे विसर्ग के समान वर्ण जिह्वामूलीय कहे जाते हैं ।
प फ इति पफाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृश उपध्मानीयः ।
अर्थ- प एवं फ के पहले आधे विसर्ग के समान वर्ण उपध्मामनीय कहे जाते हैं ।
अं अः इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ ॥
अर्थ- अं अः में अच् के बाद का वर्ण अनुस्वार तथा विसर्ग हैं ।

11. अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः

प्रतीयते विधीयत इति प्रत्ययः । अविधीयमानोऽणुदिच्च सवर्णस्य संज्ञा स्यात् । अत्रैवाण् परेण णकारेण । कु चु टु तु पु एते उदितः । तदेवम् - अ इत्यष्टादशानां संज्ञा । तथेकारोकारौ । ऋकारस्त्रिंशतः । एवं ऌकारोऽपि । एचो द्वादशानाम् । अनुनासिकाननुनासिकभेदेन यवला द्विधा; तेनाननुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोस्संज्ञा ।

सूत्रार्थ- जिसे विधान किया जाय उसे प्रत्यय कहा जाता है। अविधीयमान अण् और उदित अपने तथा अपने सवर्ण की तथा अपने स्वरूप की संज्ञा होती है ।

इस सूत्र में कहा गया अण् प्रत्याहार, बाद वाले णकार अर्थात लण् सूत्र से ग्रहीत होता है । कु चु टु तु पु ये उदित कहे जाते है । इस प्रकार अ 18 प्रकार की संज्ञा वाला है । इसी प्रकार इकार और उकार भी 18 प्रकार की संज्ञा वाला है । ऋ 30 प्रकार की संज्ञा वाला होता है । इसी प्रकार ऌ भी 30 प्रकार की संज्ञा वाला होता है । एच् प्रत्याहार के वर्ण 12 संज्ञा वाले होते है । अनुनासिक और अननुनासिक के भेद से य् व् ल् दो-दो प्रकार के होते हैं । इसीलिए अननुनासिक य् व् ल् की 2- 2 संज्ञा होगी ।

12. परः संन्निकर्षः संहिता

वर्णानामतिशयितः सन्निधिः संहितासंज्ञः स्यात् ॥

सूत्रार्थ- वर्णों की अत्यन्त समीपता को संहिता कहते हैं ।

13. हलोऽनन्तराः संयोगः

अज्भिरव्यवहिता हलः संयोगसंज्ञाः स्युः ॥

सूत्रार्थ- दो हलों के बीच में किसी अच् का व्यवधान न हो उसकी संयोग संज्ञा होती है ।

14. सुप्तिङन्तं पदम्

सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात् ॥

सूत्रार्थ- सुबन्त और तिङन्त की पद संज्ञा होती है।

संज्ञाप्रकरणम् से जुडी कुछ ध्यातव्य बातें -

इस प्रकरण में हमने वर्णों का परिचय एवं स्वर वर्णों के सभी भेद को जान लिया है । हमेशा यह ध्यान रखना होगा कि जब भी अ इ उ ए आदि वर्णों के विषय में कहा जाय, उसके साथ ही दीर्घ एवं प्लुत स्वर भी सम्मिलित रहता है । अतः अ कहने का तात्पर्य आ भी है । इसी प्रकार अन्य स्वरों के बारे में भी समझना चाहिए । यहाँ हमने वर्णों के उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न के बारे में भी जाना । यह शुद्ध उच्चारण करने में सहायक है । आगे आप सन्धि आदि प्रकरण को पढ़ेंगे । दो वर्णों के बीच सन्धि आदि करते समय वर्णों के स्थान व प्रयत्न एक होने पर सदृशतम आदेश होता है । सन्धि में वर्ण परिवर्तन का रहस्य, उच्चारण की वैज्ञानिकता में भी छिपी है । आप इसका भी अनुभव करेंगें । इत्, लोप, सवर्ण, संहिता एवं संयोग आदि संज्ञा के नियमों को ध्यान में रखना चाहिए । यह सम्पूर्ण शब्द शास्त्र का मूल आधार है । इसकी आवश्यता बार-बार पडेगी ।

प्रत्याहार के द्वारा अनेक वर्णों को कम से कम वर्णों द्वारा कह पाते है । हम आज भी बोलचाल तथा अन्य व्यवहार में शब्दों को संक्षिप्त कर बोलते है । पाणिनि की यह अभूतपूर्व कल्पना एवं संरचना है,जिसके सहारे उन्होंने इतना विशाल व्याकरण शास्त्र लिखा । आप आगे देखेंगें कि इन प्रत्याहारों का प्रयोग वे कितने सूत्रों में करते है । कल्पना कीजिये यदि ये प्रत्याहार नहीं होते तो अष्टाध्यायी के इन सूत्रों को कैसे लिखा जाता? हमें कितने शब्द बार-बार याद करने पडते? माहेश्वर सूत्र में वर्णों का क्रम इस प्रकार रखा गया कि प्रत्याहार बनाने तथा उनके प्रयोग में सरलता आ गयी । माहेश्वर सूत्र को जितना जल्द हो याद कर लेना चाहिए ।

सूत्र में हल् वर्णों का आरम्भ अन्तस्थ अर्थात् यण् प्रत्याहार के वर्णों से हुआ । उसके बाद प्रत्येक वर्ग का क्रमशः 5,4,3,2,1 वर्ण आया । अंत में उष्म वर्ण अर्थात् शल् प्रत्याहार के वर्ण आये । सूत्रों में वर्णों के क्रम तथा प्रत्येक सूत्र के अंतिम हल् वर्ण स्पष्ट रूप से याद कर लें ,ताकि किसी प्रत्याहार का नाम सुनते ही तुरंत स्मरण हो जाय कि इसके बीच में कौन-कौन वर्ण आयेंगें । याद है न, यहाँ का कु चु टु तु पु ये पांचों वर्ग? ये वर्ग भी शब्द संक्षेपीकरण का अनुपम उदाहरण है । आगे हम इसी प्रकार से अन्य तरह के कुछ नये प्रत्याहारों से भी परिचित होंगें ।

अध्याय - 2

अथ अच्सन्धिः

इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये । सुधी उपास्य इति स्थिते ॥

सूत्रार्थ- इक् के स्थान पर यण् आदेश हो, अच् परे रहते संहिता के विषय में ।

सुधी उपास्य इस स्थिति में उ ई उ ये तीन इक् वर्ण हैं, उसमें से किस इक् को यण् हो? इसका समाधान अग्रिम सूत्र में करते हैं-

- **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य**

  सप्तमीनिर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम् ॥

  सूत्रार्थ- सप्तम्यन्त के उच्चारण के द्वारा किया जाने वाला कार्य दूसरे वर्ण से व्यवधान रहित पूर्व वर्ण के स्थान पर होता है ।

  इको यणचि सूत्र में अचि सप्तमी निर्देश है । अर्थात् अच् (स्वर) वर्ण बाद में रहने पर । इस निर्देश के द्वारा विधीयमान यण् कार्य, उस अच् के पूर्व वर्ण का होगा ।

  सुधी उपास्य में अच् है उपास्य का उ । इसके व्यवधान रहित पूर्व वर्ण है सुधी का ई । अतः ई को ही यणादेश होगा । सुधी में ई अच् को मानकर सु के उ को यण् नहीं हो सकता, क्योंकि यहाँ ध् वर्ण का व्यवधान है ।

  अव्यवहित- व्यवधान रहित से तात्पर्य जिन दो वर्णों के बीच कार्य हो रहा हो, उसके बीच कोई अन्य वर्ण नहीं हो ।

  इ उ ऋ ऌ के स्थान पर यण् के किस वर्ण का आदेश हो? इस शंका सा समाधान अग्रिम सूत्र में करते हैं-

- **स्थानेऽन्तरतमः**

  प्रसङ्गे सति सदृशतम आदेशः स्यात् । सुध्य् उपास्य इति जाते ॥

  सूत्रार्थ- यण् ,गुण आदि प्रसंग उपस्थित होने पर सबसे अधिक सदृश आदेश होता है ।

  प्रस्तुत उदाहरण में स्थानी इ के स्थान पर सदृशतम आदेश य् होने पर सुध्य् उपास्य यह हुआ ।

- **अनचि च**

  अचः परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि । इति धकारस्य द्वित्वेन सुध्ध्य् उपास्य इति जाते ॥

  सूत्रार्थ- अच् से परे यर् को विकल्प से द्वित्व हो, यर् के बाद अच् बाद में नहीं हो तो ।

  इस प्रकार सुध्य् + उपास्य के ध् को द्वित्व (दो वर्ण हो जाना) होकर सुध् ध् य् उपास्य हुआ ।

- **झलां जश् झशि**

  स्पष्टम् । इति पूर्वधकारस्य दकारः ॥

  सूत्रार्थ- झल् को जश् हो झश् परे रहते ।

  सुध् ध् य् उपास्य में झल् है ध् । ध् का सदृशम जश् आदेश हुआ द् । झश् ध् बाद में है। या ऐसे समझें- सुध् ध् य् उपास्य में ध् झश् बाद में रहते पूर्ववर्ती झल् ध् को जश् आदेश द् हुआ । सुद् ध् य् उपास्य रूप बना ।

- संयोगान्तस्य लोपः

  संयोगान्तं यत्पदं तदन्तस्य लोपः स्यात् ॥

  सूत्रार्थ- जिस पद के अंत में संयोग हो उसे लोप हो ।

  सुद् ध् य् उपास्य में अच् स् व्यवधान रहित वर्ण हैं- द् ध् य् । इन वर्णों की संयोग संज्ञा होती है ।

  द्वित्व विकल्प पक्ष में सु ध् य् उपास्य इस द्वित्व विकल्प पक्ष में अच् स् व्यवधान रहित वर्ण हैं- ध् य् । इन वर्णों की संयोग संज्ञा होती है । इसी प्रकार अन्यत्र भी संयोग वर्ण को समझना चाहिए ।

- अलोऽन्त्यस्य

  षष्ठीनिर्दिष्टोऽन्त्यस्याल आदेशः स्यात् । इति यलोपे प्राप्ते दृ

  सूत्रार्थ- षष्ठी द्वारा निर्देश किया गया (संयोगान्तस्य) अंतिम अल् के स्थान पर होता है ।

  इससे य् का लोप प्राप्त होता है ।

  (यणः प्रतिषेधो वाच्यः) ।

  अर्थ- संयोग के अंत में यण् के लोप का प्रतिषेध कहना चाहिए ।

  इस प्रकार संयोगान्तस्य लोपः सूत्र द्वारा प्राप्त य् के लोप का निषेध हो गया ।

  सुद्ध्युपास्यः । सुध्युपास्यः । मद्ध्वरिः । मध्वरिः । धात्त्रंशः । धात्रंशः। लाकृतिः ॥

  विशेष- रूप सिद्धि में जब जिन सूत्रों की आवश्यकता हुई लघुसिद्धान्तकौमुदी में उसी क्रम में सूत्र रखे गये हैं । मूल ग्रन्थ अष्टाध्यायी है । यहाँ पाँच प्रकार के सूत्र हैं । संज्ञा, परिभाषा, विधि, नियम, अतिदेश तथा अधिकार । यहाँ अधिकार सूत्रों की सीमा निश्चित की गयी है कि वह किस सूत्र तक होगी । इको यणचि आदि विधि सूत्रों में संहितायाम् सूत्र का अधिकार है । इसी प्रकार अनुवृत्ति को भी समझना चाहिए । इस प्रकार इको यणचि के साथ संहितायाम् भी जुडा रहता है । लघुसिद्धान्तकौमुदी में अधिकांश विधि सूत्र दिये गये हैं । सामान्यतः शब्द की सिद्धि के लिए संज्ञा तथा विधि सूत्र से काम चल सकता है । एक रूप की सिद्धि में अनेक सूत्र लगने, सूत्रों का अर्थ स्पष्ट करने तथा अन्य समस्या के समाधान में परिभाषाओं की आवश्यकता होती है । जब निर्धारित कार्य नहीं होता उसे विकल्प कहते हैं । आपको सूत्रों तथा श्लोकों में यण् सन्धियुक्त को पदों को ढूंढ कर सन्धि विच्छेद करने का अभ्यास चाहिए ।

- एचोऽयवायावः

  एचः क्रमादय् अव् आय् आव् एते स्युरचि ॥

  सूत्रार्थ-एच् को क्रमशः अय् अव् आय् आय् आदेश हो एच् के बाद अच् बाद में हो तो। संहिता के विषय में ।

- यथासंख्यमनुदेशः समानाम्

  समसम्बन्धी विधिर्यथासंख्यं स्यात् । हरये । विष्णवे । नायकः । पावकः ॥

  सूत्रार्थ- सम सम्बन्धी (स्थानी तथा आदेश दोनों की संख्या समान) विधि क्रमशः होती है ।

  इस सूत्र में चार स्थानी तथा चार आदेश हैं । अतः स्थानी ए ओ ऐ औ के स्थान पर आदेश क्रमशः अय् अव् आय् तथा आव् आदेश होगा ।

हरये ।

हरे + ए में एच् ए के स्थान पर अच् ए बाद में रहने पर यथासंख्यमनुदेशः समानाम् के निर्देश से क्रमानुसार अय् आदेश हुआ । हरय् + ए बना । परस्पर वर्ण संयोग होने पर हरये हुआ । इसी प्रकार अन्यत्र भी रूप सिद्ध करें। इसे संस्कृत में इस प्रकार लिखते हैं ।

हरे + ए इति स्थिते एचोऽयवायावः इत्यनेन एचः एकारस्य स्थाने अचि एकारस्य परत्वे स्थिते अयादयः आदेशः प्राप्तः यथासंख्यमनुदेशः समानाम् इति सूत्र सहकारेण एकारस्थाने अयादेशे कृते हरय्+ए इति स्थिते । परस्परवर्णसंयोगे हरये इति रूपं सिद्धम् ।

विष्णवे ।

विष्णो + ए में एच् ओ के के स्थान पर अच् ए बाद में रहने पर अव् आदेश हुआ। विष्णव्+ए हुआ । परस्पर वर्ण संयोग होने पर विष्णवे बना ।

नायकः ।

नै + अकः में एच् ऐ के स्थान पर अच् ए बाद में रहने पर आय् आदेश हुआ । नाय्+अकः हुआ । परस्पर वर्ण संयोग होने पर नायकः बना ।

पावकः ।

पौ + अकः में एच् औ के स्थान पर अच् अ बाद में रहने पर आव् आदेश हुआ । पाव्+अकः हुआ । परस्पर वर्ण संयोग होने पर पावकः बना ।

- वान्तो यि प्रत्यये

  यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्तः । गव्यम् । नाव्यम् ।

  सूत्रार्थ- यकारादि प्रत्यय परे रहते ओ और औ को अव् तथा आव् आदेश हो ।

गव्यम् ।

गो + यम् में यकारादि प्रत्यय यम् का य परे रहते ओ के स्थान पर अव् आदेश हुआ । गव्+यम् हुआ । परस्पर वर्ण संयोग होने पर गव्यम् रूप बना । इसी प्रकार नाव्यम् में नौ+यम्, औ को आव् आदेश, नाव्यम् रूप बना । (अध्वपरिमाणे च) । गव्यूतिः ॥

- अदेङ् गुणः

  अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्यात् ॥

  सूत्रार्थ- अत् और एङ् की गुण संज्ञक हों। सूत्र के अत् का अर्थ स्पष्ट करने के लिए आगामी सूत्र है-

- तपरस्तत्कालस्य

  तः परो यस्मात्स च तात्परश्चोच्चार्यमाणसमकालस्यैव संज्ञा स्यात् ॥

  सूत्रार्थ- त् वर्ण जिस वर्ण के बाद हो और त् वर्ण के बाद जो बोला जाने वाला वर्ण हो, वह अपने समकाल (उच्चारण काल) की संज्ञा का बोधक हो। सूत्र में तपरः की दो व्याख्या हैं। 1. तपरः 2. तात्परः। तपरः का अर्थ है त् वर्ण जिस वर्ण के बाद हो। तात्परः का अर्थ है त् वर्ण के बाद जो वर्ण हो। अत् शब्द में त् अ के बाद में है। इसका समकाल ह्रस्व अ है। अतः यह अ अपने दीर्घ आ तथा प्लुत अ का बोधक नहीं होगा। अदेङ् गुणः में अत् के त् वर्ण के बाद एङ् है, अतः एङ् से दीर्घ ए ओ का ही बोध होगा प्लुत ए ओ का नहीं ।

- आद्गुणः

  अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुण आदेशः स्यात् । उपेन्द्रः । गङ्गोदकम् ॥

  सूत्रार्थ- अवर्ण से अच् बाद में होने पर पूर्व तथा पर वर्णों के बीच गुण एकादेश हो ।

  उपेन्द्रः । उप + इन्द्रः में अवर्ण है उप का अ, अच् परे है इन्द्रः का इ, पूर्व का अ तथा पर के इ के स्थान पर ए गुण एकादेश होगा । उपेन्द्रः बना । इसी प्रकार गङ्गोदकम् में गङ्गा + उदकम्, आ + उ = ओ, गङ्गोदकम् रूप सिद्ध हुआ ।

उपेन्द्रः में अ, इ तथा ए का उच्चारण स्थान समान है, अतः स्थानेन्तरतमः से ए गुण एकादेश होगा। गङ्गोदकम् में आ + उ का स्थान सादृश्य भी है।
विशेष- जिस सन्धि में एकादेश का विधान किया गया है, वहाँ एकः पूर्वपरयोः का अधिकार है। एक के स्थान पर एक आदेश करने का कोई अर्थ नहीं है। एकादेश जब भी होगा दो वर्णों का ही होगा। उन दोनों पूर्व तथा पर वर्णों के बीच व्यवधान भी नहीं होना चाहिए। यह नियम पूर्व में कहा जा चुका है। अतः आगे जब भी एकादेश कहा जाय, उसका अर्थ होगा पूर्व तथा पर वर्ण का एकादेश।

- उपदेशेऽजनुनासिक इत्

उपदेशेऽनुनासिकोऽजित्संज्ञः स्यात्। प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः। लण्सूत्रस्थावर्णेन सहोच्चार्यमाणो रेफो रलयोः संज्ञा॥
सूत्रार्थ- उपदेश में अनुनासिक अच् की इत् संज्ञा हो।
प्रतिज्ञेति- कौन स्वर वर्ण अनुनासिक है, कौन नहीं, यह पाणिनीय परम्परा के आचार्यों की प्रतिज्ञा से ज्ञात होता है। लण् सूत्र में स्थित अवर्ण के साथ उच्चारित किया जाने वाला ँ वर्ण ँ तथा ल् की बोधक संज्ञा है॥

- उरण् रपरः

ऋ इति त्रिंशतः संज्ञेत्युक्तम्। तत्स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव प्रवर्तते। कृष्णर्द्धिः। तवल्कारः॥
सूत्रार्थ- ऋ 30 प्रकार की संज्ञाओं वाला है, यह संज्ञा प्रकरण में कहा जा चुका है। ऋ के स्थान पर किये जाने वाले अणादेश के तुरन्त बाद र् भी साथ में हो।
ऋ वर्ण के स्थान पर होने वाला जो अण् (अ इ उ) वह र् पर वाले होते हैं। लण् सूत्र के ल का अ उपदेशेऽजनुनासिक इत् सूत्र से इत्संज्ञक होने के कारण र प्रत्याहार बनेगा। इसमें आदि वर्ण र् तथा अंत वर्ण ल् का ग्रहण होने से र प्रत्याहार में र् तथा ल् दोनों वर्णों का ग्रहण होगा। इस प्रकार र पर में हो, ऐसा कहने से ल् का भी ग्रहण होगा। इस सूत्र में र प्रत्याहार है।
कृष्णर्द्धिः। कृष्ण + ऋद्धि यहाँ ण् + अ + ऋ यह स्थिति है। अर्थात् ण् के बाद अ तथा इसके परे ऋद्धि का ऋकार अच् है। आद् गुणः से अ तथा ऋ के स्थान पर गुण एकादेश अ हुआ। स्थानेन्तरतमः से अ के बाद ँ आया। कृष्ण अँ द्धि हुआ । वर्ण संयोग करने पर कृष्णर्द्धिः रूप बना।

- लोपः शाकल्यस्य

अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोपो वाऽशि परे॥
सूत्रार्थ- अवर्ण पूर्व वाले पदान्त यकार तथा वकार का लोप हो विकल्प से अश् परे रहते।

- पूर्वत्रासिद्धम्

सपादसप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा, त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धम्। हर इह, हरयिह। विष्ण इह, विष्णविह॥
सूत्रार्थ- अष्टाध्यायी के अध्याय सात पाद 1 (सपादसप्ताध्यायी 7.1) के सूत्र प्रति तीन पादों (त्रिपादी) में स्थित सूत्र असिद्ध होते हैं। तीनों पादों में भी पूर्व सूत्र के प्रति बाद वाले सूत्र असिद्ध होते हैं।

विशेष-
पाणिनि द्वारा विरचित अष्टाध्यायी पुस्तक में 8 अध्याय हैं। इसके प्रत्येक अध्याय में 4 - 4 पाद हैं। जैसे प्रथम अध्याय में 4 पाद, दूसरे अध्याय में 4 पाद, तीसरे अध्याय में 4 पाद। इस प्रकार सभी आठों अध्यायों में 4 - 4 पाद हैं। पाद को हिन्दी में पैर कहते हैं। जैसे एक गाय के 4 पैर होते हैं। दूसरे तथा तीसरे गाय के भी चार-चार पैर होते हैं।

अर्थात् सवा सात अध्याय के सूत्र तथा त्रिपादी के सूत्र यदि एक स्थान पर प्रवृत्त हों तो त्रिपादी में स्थित सूत्र का कार्य नहीं होता है। त्रिपादी के सूत्रों में भी पहले वाले सूत्र तथा बाद वाले सूत्र में बाद वाले सूत्र का कार्य नहीं होगा। जैसे- हरे + इह में ए को अय् आदेश होकर हरय् + इह हुआ। लोपः शाकल्यस्य से पदान्त यकार के पूर्व अवर्ण है, इह का इ बाद में है, जो कि अश् प्रत्याहार में आता है। सूत्र घटित होने से य् का विकल्प से लोप हो गया। हर इह बना। हर इह में आद् गुणः से गुण क्यों नहीं हो सकता? इस शंका के समाधान में पूर्वत्रासिद्धम् सूत्र आता है। आद् गुणः सपादसप्ताध्यायी का सूत्र है। आद्गुणः के समक्ष त्रिपादी के सूत्र लोपः शाकल्यस्य का कार्य नहीं हो सकता है। लोपः शाकल्यस्य के असिद्ध होने से आद् गुणः को हरय् इह ही दिख रहा है। अतः यहाँ गुण नहीं हुआ। यकार का लोप नहीं होने पर हरयिह रूप बनेगा। इसी प्रकार विष्णो + इह में अव् आदेश कर रूप बनाना चाहिए।

- वृद्धिरादैच्

आदैच्च वृद्धिसंज्ञः स्यात्॥

सूत्रार्थ- आत् तथा ऐच् की वृद्धि संज्ञा हो।

तपरस्तत्कालस्य से आत् में तपर तथा ऐच् तकार के बाद में होने से यहाँ दीर्घ आ ऐ औ का ही ग्रहण होगा। प्लुत का नहीं। जहाँ आ वृद्धि होगी वहाँ रपर तथा लपर भी होगा।

- वृद्धिरेचि

आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। गुणापवादः। कृष्णैकत्वम्। गङ्गौघः। देवैश्वर्यम्। कृष्णौत्कण्ठ्यम्॥

सूत्रार्थ- अवर्ण से एच् परे रहने पर पूर्व पर के स्थान पर वृद्धि एकादेश हो।

यह वृद्धि गुण सन्धि का अपवाद है।

वृद्धिरेचि सूत्र में आद्गुणः से पञ्चम्यन्त आत् का अनुवर्तन होता है। एक पूर्वपरयोः का अधिकार होने से पूर्व तथा पर के स्थान पर यह चला आ रहा है॥ आद्गुणः से यहाँ गुण प्राप्त था। अलग से सूत्र बनाकर वृद्धि का विधान करना सिद्ध करता है कि यह गुण सन्धि का अपवाद है॥

कृष्णैकत्वम्। कृष्ण + एकत्वम् में अवर्ण है कृष्ण का अकार, इसके एच् परे है एकत्वम् का एकार। पूर्व अ तथा पर ए, दोनों के स्थान पर एक वृद्धि आदेश ऐ (अ + ए = ऐ) होगा। कृष्ण + ऐकत्वम् = कृष्णैकत्वम् रूप बना। यहाँ अकार और एकार का उच्चारण स्थान क्रमशः कण्ठ और तालु है अतः वही कण्ठ तालु उच्चारण स्थान वाला ऐकार एकादेश होगा।

विशेष- यहाँ कृष्णस्य एकत्वम् षष्ठी तत्पुरूष समास है।

इसी प्रकार गङ्गा + ओघः में आकारस्य ओकारस्य च कण्ठ ओष्ठ स्थान वाला औकार एकादेश होगा। इसी प्रकार देवैश्वर्यम् एवं कृष्णौत्कण्ठ्यम् में भी समझना चाहिए।

- एत्येधत्यूठ्सु

अवर्णादिजाद्योरेत्येधत्योरूठि च परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। (पररूपगुणापवादः) उपैति। उपैधते। प्रष्ठौहः। एजाद्योः किम्? उपेतः। मा भवान्प्रेदिधत्।

सूत्रार्थ - अवर्ण से परे एजादि धातु सम्बन्धी एति, एधति तथा ऊठ् परे रहने पर वृद्धि एकादेश हो।

यह सूत्र उप +एति, उप + एधते आदि में एङि पररूपम् से प्राप्त पररूप तथा प्रष्ठ + ऊह जैसे स्थलों पर आद्गुणः से प्राप्त गुण का अपवाद है। उप +एति में अ तथा ए को वृद्धि एकादेश ऐ होकर उपैति बना। एति क्रिया इण् गतौ धातु से निष्पन्न है। इसी प्रकार उप + एधते तथा प्रष्ठ + ऊहः में भी वृद्धि एकादेश हुआ।

एजाद्योः किमिति – सूत्र से एति, एधति का विशेषण एजादि इस कारण से रखा गया कि उप + इतः जैसे स्थल पर इस सूत्र से वृद्धि नहीं हो। इतः इण् धातु से निष्पन्न है। यदि एजादि विशेषण नहीं लगाया जाय तो प्रकृत सूत्र से यहाँ वृद्धि होने लगेगा। यहाँ वृद्धि न होकर गुण अभीष्ट है। अतः इण् धातु का विशेषण एजादि लगाया । गुण होकर उपेतः रूप बनेगा। इसी प्रकार प्रेदिधत् में प्र + इदिधत् में गुण होगा वृद्धि नहीं।

विशेष–

1. व्याकरण में सूत्रों के नियमों को स्मरण रखना जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही सूत्रों (नियमों) के विश्लेषण का भी। विश्लेषण के पश्चात् ही उचित अनुचित का बोध हो सकता है। हम निर्णय तक पहुँच पाते है। विश्लेषण के बाद ही सही निष्कर्ष तक पहुँचा जा सकता है। कई स्थलों पर सूत्रों में बाध्य बाधक भाव है। उसका सही निर्णय तब हो पाता है जब हम उसके बारे में गहरी छानबीन करते है। व्याकरण में इसे परिष्कार कहा जाता है। रूपों की सिद्धि तक का भाग प्रक्रिया कहलाता है। एजाद्योः किम् जैसे प्रश्न परिष्कार या विश्लेषण के लिए है। ग्रन्थकार इस प्रकार के प्रश्न के द्वारा हमें सूत्रों के प्रत्येक अनुबन्धों (शर्तो) की उपयोगिता से परिचित कराता है। आपको आगे कई स्थलों पर इस प्रकार के प्रश्न मिलेंगें। आप भी सूत्रार्थ के किसी एक अंश को हटाकर उससे होने वाले प्रभाव को परख सकते है।

2. पूर्व-पर-नित्य-अन्तरङ्ग-अपवादानाम् उत्तरोत्तरं बलीयः नित्य का अपवाद (पररूपगुणापवादः)
जहाँ सामान्य विधि की अनिवार्य प्रवृत्ति हो रही हो, उसी सामान्य विधि में से कुछ अंश को लेकर नवीन विधि आरम्भ की जाती है, वह विशेष होने से सामान्य का अपवाद बन जाती है। गुण तथा पररूप सामान्य नियम है, जबकि एजादि धातु सम्बन्धी एति, एधति तथा ऊठ् परे रहने पर वृद्धि एकादेश नवीन विधि है अतः एत्येधत्येठ्सु सूत्र एङि पररूपम् तथा आद् गुणः का अपवाद है।
अन्य उदाहरण देखें– 'अनेकाल्शित् सर्वस्य' (अष्टा. 1.1.55) सम्पूर्ण के स्थान पर करता है। इस सामान्य विधि के विषय से 'ङिच्च' (अष्टा. 1.1.53) ङित् को लेकर अन्त्यादेश नियम करता है, जो कि विशेष विधि है। अतः 'ङिच्च' सूत्र 'अनेकाल्शित् सर्वस्य' के सर्वादश का बाधक है।

3. (पररूपगुणापवादः) अवर्ण से अच् परे रहने पर गुण होता है। अच् प्रत्याहार के अन्तर्गत सभी स्वर वर्ण आते है। अच् प्रत्याहार में कुल 9 वर्ण आते है। वृद्धिरेचि अवर्ण से एच् परे रहने पर वृद्धि करता है। एच् प्रत्याहार में 4 वर्ण आते है। गुण करने के लिए अच् निमित्त है जबकि वृद्धि करने के लिए एच् निमित्त है। जहाँ- जहाँ वृद्धि प्राप्त है, वहाँ - वहाँ गुण भी प्राप्त है। ऐसी स्थिति में एक परिभाषा लगती है– असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे। अन्तरङ्ग कार्य जहाँ प्राप्त हो वहाँ बहिरङ्ग कार्य असिद्ध होता है। यहाँ हमें अन्तरङ्ग तथा बहिरङ्ग शब्द को समझना होगा। इसे अन्तः (भीतर) और बहिः (बाहर) से भी समझा जा सकता है। अन्तः में ही यहि काम बन जाय तो भला कौन बाहर जाना चाहता है। या यूँ कहें– पास के लोगों का काम पहले तथा दूर के लोगों का काम बाद में होता है। बहिरङ्ग वह है जो अपेक्षाकृत अधिक निमित्त की अपेक्षा रखता है तथा अन्तरङ्ग वह है जो कम निमित्त तथा व्याख्यान की अपेक्षा रखता है । अब इसे गुण और वृद्धि के सन्दर्भ में देखें। गुण का निमित्त अच् है। गुण कार्य में अच् की अपेक्षा है। अच् बाद में होने पर ही गुण होगा। वृद्धि का निमित्त (एच्) अपेक्षा इसमें अधिक वर्ण है, अतः वृद्धि अन्तरङ्ग है और गुण बहिरङ्ग। जहाँ अन्तरङ्ग कार्य प्राप्त होगा वहाँ बहिरङ्ग कार्य असिद्ध हो जाएगा। अतः प्राप्त + ओषधीनाम् में प्राप्त गुण को बाधकर वृद्धि होती है। प्राप्तौषधीनम् रूप बनेगा।

अब आगे–
अभी तक आपने जाना कि गुण को बाधकर अवर्ण के बाद एङ् होने पर वृद्धि होती है, परन्तु वृद्धि को बाधकर एङि पररूपम् से पररूप हो जाता है। यह सूत्र अवर्णान्त उपसर्ग से एङादि धातु परे रहने पर पररूप एकादेश करता है। ए, ओ, ऐ तथा औ वर्ण जिस धातु के आदि में वही यह सूत्र लगेगा। अभी तक सभी प्रकार के जिस शब्द के आदि में एङ् होता था वहाँ वृद्धि प्राप्त थी। पररूप की अपेक्षा वृद्धि

का कार्य अधिक निमित्त की अपेक्षा रखता है अतः पररूप की अपेक्षा वृद्धि का कार्य बहिरङ्ग होने से असिद्ध हो जाएगा।

इसी प्रकार उपैति, उपैधते आदि में प्राप्त गुण को वृद्धि के प्रति असिद्ध है। एङि पररूपम् से होने वाले पररूप के प्रति वृद्धि असिद्ध है तथा एत्येधत्यूठ्सु से प्राप्त वृद्धि के प्रति पररूप असिद्ध है। वृद्धिः न भवति किन्तु ए इति पररूपं भवति।

उदाहरण – उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतकल्मषम् ॥ गीता 6.27 ॥

(अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्) । अक्षौहिणी सेना ।

सूत्रार्थ–अक्ष शब्द परे ऊहिनी होने पर वृद्धि एकादेश हो ।

अक्ष + ऊहिनी में अ तथा ऊ के स्थान पर औ वृद्धि एकादेश होकर अक्षौहिणी रूप बना ।

(प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु) । प्रौहः । प्रौढः । प्रौढिः । प्रैषः । प्रैष्यः ।

सूत्रार्थ– प्र उपसर्ग के पश्चात् ऊह, ऊढ, ऊढि, एष तथा एष्य बाद में हो तो वृद्धि एकादेश हो।

प्रौह, प्रौढ, । प्रौढि में गुण प्राप्त था, जिसे बाधकर इससे बृद्धि हुई। प्रैषः प्रैष्यः में वृद्धिरेचि से वृद्धि करने पर भी यही रूप बनता पुनः इस सूत्र द्वारा अलग से विधान करने के प्रयोजन पर विचार करना चाहिए ।

(ऋते च तृतीयासमासे) । सुखेन ऋतः सुखार्तः । तृतीयेति किम् ? परमर्तः ।

सूत्रार्थ– अवर्ण से ऋत शब्द परे रहते पूर्व पर के स्थान पर वृद्धि एकादेश हो तृतीया समास में।

सुखार्त का लौकिक विग्रह करते हैं– सुखेन ऋतः । सुख + ऋत इस स्थिति में पूर्व पर के स्थान पर वृद्धि तथा रपर आदेश हुआ। सुखार्तः बना। यदि तृतीया समास से कोई भिन्न समास होगा तो वहाँ वृद्धि नहीं होगी। जैसे परमश्चासौ ऋतः में कर्मधारय समास है। अतः परम + ऋत में गुण होगा वृद्धि नहीं।

(प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे) । प्रार्णम्, वत्सतरार्णम्, इत्यादि ॥

सूत्रार्थ– प्र वत्सतर कम्बल वसन ऋण दश के बाद ऋण शब्द होने पर वृद्धि एकादेश हो।

प्र + ऋणम् में अ + ऋ = आर् । प्रार्णम् बना।

- उपसर्गाः क्रियायोगे

प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः । प्र परा अप सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति परि उप दृ एते प्रादयः ॥

सूत्रार्थ– प्रादि का क्रिया के साथ योग होने पर उपसर्ग संज्ञा हो। प्र परा अप सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति परि उप ये प्रादि हैं।

- भूवादयो धातवः

क्रियावाचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञाः स्युः ॥

सूत्रार्थ– क्रिया वाचक भू आदि की धातु संज्ञा हो।

- उपसर्गादृति धातौ

अवर्णान्तादुपसर्गादृकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । प्रार्च्छति ॥

सूत्रार्थ– अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि धातु के परे रहते पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश हो।

प्र + ऋच्छति यहाँ पर ऋच्छति में ऋच्छ भूवादि गण पठित है। इसे भूवादयो धातवः से धातु संज्ञा हुई। ऋच्छति क्रिया के साथ प्र है, अतः प्र को उपसर्गाः क्रियायोगे से उपसर्ग संज्ञा हुई। प्र + ऋच्छति में अवर्णान्त उपसर्ग है प्र का अ, इसके परे ऋकारादि धातु है ऋच्छति का ऋ । पूर्व अ पर ऋ के स्थान में वृद्धि हुई

आ । उरण् रपरः से आ के बाद र् आने पर रूप बना प्रार्च्छति । इसी प्रकार अन्य ऋकारादि धातु के साथ उपसर्गों का रूप बनाना चाहिए।

- एङि पररूपम्

आदुपसर्गादेङादौ धातौ पररूपमेकादेशः स्यात् । प्रेजते । उपोषति ॥

सूत्रार्थ- अवर्णान्त उपसर्ग से एङादि धातु परे रहने पर पररूप एकादेश हो।

प्रेजते । प्र + एजते यहाँ पर वृद्धिरेचि से वृद्धि प्राप्त है परन्तु इसे बाधकर इस सूत्र से पूर्व अ तथा पर ए के स्थान पर पररूप एकादेश ए होगा। प्रेजते रूप बना। इसी प्रकार उपोषति में उप + ओषति में पररूप एकादेश ओ होकर उपोषति रूप बनेगा।

- अचोऽन्त्यादि टि

अचां मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञं स्यात् ।

सूत्रार्थ- अचों के मध्य जो अंतिम अच् वह जिसके आदि में हो उस समुदाय की टि संज्ञा होती है।

(शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्) । तच्च टेः । शकन्धुः । कर्कन्धुः। मनीषा । आकृतिगणोऽयम् । मार्त्तण्डः ॥

सूत्रार्थ- शकन्धु आदि में वाक्य के टि को पररूप होता है।

शकन्धुः। शक + अन्धु में शक में दो अच् है, इसमें अंतिम अच् है क के पश्चात् अ । वह अकेले है। अतः वही आदि, मध्य और अंत होगा। अ स्वयं के आदि में है। उस अ की टि संज्ञा हुई। शकन्ध्वादि से शक + अन्धु में पूर्व अ तथा पर अ को पररूप अन्धु के अ की तरह हो गया। मनस् + ईशा में टि संज्ञक अंग होगा, अस् । अस् तथा ई दोनों के स्थान पर पररूप होगा ई। मनीषा सिद्ध होगा।

- ओमाङोश्च

ओमि आङि चात्परे पररूपमेकादेशः स्यात् । शिवायों नमः । शिव एहि ॥

सूत्रार्थ- अवर्ण से ओम् तथा आङ् परे रहते पररूप एकादेश हो।

- अन्तादिवच्च

योऽयमेकादेशः स पूर्वस्यान्तवत्परस्यादिवत् । शिवेहि ॥

शिवाय + ओम् में अवर्ण से ओम् बाद में रहने पर पररूप होकर शिवायों बना।

शिवेहि। शिव + आ + इहि इस स्थिति में आद् गुणः सूत्र से आ तथा इ को गुण होकर ए हुआ। शिव एहि यहाँ पर आ दृश्य नहीं होने पर अन्तादिवच्च सूत्र प्रवृत्त हुआ। आ तथा इ का जो यह ए एकादेश है वह पूर्व आ शब्द अन्त के समान होगा। अर्थात् आ एक ही वर्ण है अतः यही पूर्व, पर तथा मध्य है। आ आदि के समान भी होगा। अब ओमाङोश्च से पर में आ होने के कारण शिव + एहि में आङ् (आ) परे रहने पर पररूप एकादेश हुआ। शिवेहि रूप बना।

- अकः सवर्णे दीर्घः

अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोर्दीर्घ एकादेशः स्यात् । दैत्यारिः । श्रीशः । विष्णूदयः । होतॄकारः ॥

सूत्रार्थ- अक् से सवर्ण अच् परे रहने पर पूर्व पर के स्थान में दीर्घ एकादेश हो।

दैत्यारिः। दैत्य + अरिः में य के अ तथा अरिः के अ का सवर्ण दीर्घ एकादेश आ हुआ। अ तथा आ का उच्चारण स्थान एक होने से तुल्यास्य प्रयत्नं सूत्र से सवर्ण ग्राहकता होती है। श्री + ईश, ई + ई = ई । विष्णु + उदय, उ + उ = ऊ। होतृ + ऋकार, ऋ +ऋ = ॠ में भी सवर्ण दीर्घ होकर श्रीशः, विष्णूदयः, होतॄकारः रूप बनेगा ।